

## मोहन राकेश के उपन्यास 'अँधेरे बन्द कमरे' में अलगाव बोध

दीक्षा मेहरा

अनुसन्धानित्सु, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

### प्रस्तावना

मनुष्य के अकेलेपन, आत्मनिर्वासन, परायापन, कुण्ठा, निराशा, संत्रास, विरक्ति, विमुखता, उदासीनता, सामाजिक सम्बन्धों में बिखराव तथा सामाजिक जीवन से दूर भागते हुए स्वयं के अस्तित्व की खोज से अलगाव की स्थिति पैदा होती है। अलगाव मानव की विभिन्न मानसिक दशाओं की अभिव्यक्ति है, जिसमें मनुष्य सामाजिक अस्तित्व से दूर स्वयं के अस्तित्व को अधिक महत्व देता है। वर्तमान समय में मनुष्य आपसी प्रेम, विश्वास, मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के टूटने, मानव के उदात्त मूल्यों के विघटन तथा श्रमगत विडम्बनाओं के कारण भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक स्तर पर अलगाव के अवसाद से पीड़ित है। मोहन राकेश के उपन्यासों में अलगाव बोध की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनों रूपों में हुई है, क्योंकि स्वयं उपन्यासकार मोहन राकेश जी का जीवन अलगाव के अवसाद से पीड़ित रहा है। उनके सभी उपन्यासों में उनके निजी जीवन में भोगे गये यथार्थ की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। एक इंटरव्यू में उनकी पूर्व पत्नी सुशीला डोभाल ने अलगाव के सन्दर्भ में कहा है कि- "हमारा अलगाव पर्सनैलिटी का क्लेश, व्यक्तित्वों का द्वन्द्व था। कोई कटुता नहीं थी। बस जैसे दो बुद्धिमान लोग अलग हों अच्छे ढंग से, वैसे ही अलग हुए।"<sup>1</sup>

मोहन राकेश ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज के प्रश्नों को जागृत कर मानव के सूक्ष्म तन्तुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया है। इनके तीनों ही उपन्यासों 'अँधेरे बंद कमरे' 1961, 'न आने वाला कल' 1969, अंतराल 1972 की विषय वस्तु स्त्री-पुरुष संबंधों में द्वन्द्व व अलगाव की विभिन्न स्थितियों को उजागर करती है। वस्तुतः इनके सभी पात्र मोहन राकेश के जीवन के आसपास के ही प्रतीत होते हैं। डॉ. यश गुलाटी, जागृति के मोहन राकेश विशेषांक में लिखते हैं- "यह रचना दृष्टि अपने जीवन संघर्षों और तत्कालीन सामाजिक आर्थिक और साहित्यिक माहौल से निरन्तर अन्तर्क्रिया के द्वारा अर्जित की थी।"<sup>2</sup> इसीलिए इनमें यथार्थता है। इस संबंध में वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता का कथन समीचीन है- "मोहन राकेश के तीनों उपन्यासों में शहरी जीवन की मध्यमवर्गीय कुंठा का निरूपण है। नर-नारी सम्बन्धों के संदर्भ में इस कुंठा के अनेक पक्ष उपन्यासों में उभरकर सामने आए हैं

इसीलिए इन उपन्यासों को अँधेरे की भटकन कहा गया है।"<sup>3</sup>

'अँधेरे बंद कमरे' में राकेश जी ने आपसी सम्बन्धों के टूटने की पीड़ा और अनिश्चित नियति का उद्घाटन किया है, इस उपन्यास की कथावस्तु और घटनाएं अलगाववादी परिस्थितियों का बोध कराने में समर्थ है। अलगाव बोध को उजागर करने के लिए एक ओर कथावस्तु में मानसिक द्वन्द्व का समावेश किया गया है, तो दूसरी ओर पात्रों का चयन भी इस दृष्टिकोण को साकार करने के लिए किया गया है। देशव्यापी सांस्कृतिक स्खलन और सांस्कृतिक कार्यकलापों के द्वारा भारतीय राजनीति में पश्चिमी हस्तक्षेप का अंकन तथा गिरते भारतीय राजनीतिक मूल्यों का चित्रण भी किया है। अस्तित्ववादी मनोवृत्ति, अनिश्चय बोध, मृत्यु बोध तथा अजनबीपन का बोध राकेश जी के उपन्यासों को अधिक संवेदनशील बना देते हैं। श्रीकांत वर्मा ने लिखा है- "जहां तक इसकी घुटन, ऊब और एकरसता का संबंध है शायद यह पहला उपन्यास है जिसने इतनी तीव्रता के साथ इसे प्रतिष्ठित किया है। 'अँधेरेबंद कमरे' यदि एक महत्वपूर्ण उपन्यास है तो केवल इस दृष्टि से"<sup>4</sup> इस उपन्यास में प्रेम की कोमलता, काम की भूख, जीवन की निरर्थकता, मानसिक द्वन्द्व, मानव नियति की चिंता, वर्तमान जीवन के विशेषकर महानगरीय जीवन के घुटन भरे माहौल का चित्रण पूरी यथार्थता के साथ हुआ है। गोपाल राय ने 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में लिखा है- "इस उपन्यास में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, छठे दशक की दिल्ली की पृष्ठभूमि में कलाकारों, लेखकों और पत्रकारों की अन्दरूनी जिन्दगी का, उनके परिवेश से संघर्ष, समझौते तथा तजन्म निराशा और कुंठा का अंकन किया गया है। इस संघर्ष में किस तरह दांपत्य जीवन में दरारें पैदा होती हैं, प्रेम एक बेमानी सी चीज बनकर रह जाता है और कला और साहित्य से जुड़े व्यक्ति अपने-अपने मन के अँधेरे कमरों में घुटन की जिन्दगी जीने को अभिशप्त होते हैं, इसी का चित्रण कलाकार का लक्ष्य है। महानगर के कलाजीवी और मसिजीवी समाज का अंकन मोहन राकेश ने अपने अनुभव और संवेदना की गहराई के साथ किया है।"<sup>5</sup>

'अँधेरे बंद कमरे' में हरबंस, नीलिमा, मधुसूदन, शुक्ला, सरोज, सरिता, बीजी, सुरजीत, जीवन भार्गव, अरविन्द, कस्साबपुरा के ठाकुर, ठकुराइन, निम्मो, इबादत अलि, खुरशीद, गोपाल की मां तथा

सुषमा श्रीवास्तव उल्लेखनीय पात्र है। इनके माध्यम से उपन्यासकार ने स्वतंत्रता के बाद बहुत तेजी से बदल रहे और नई दिशा की ओर बढ़ रहे समाज को चित्रित किया है। एक ऐसा बदलाव, जिसमें भौतिक जगत में आगे बढ़ने की होड़ है और प्रेम-विश्वास जैसे शब्द पीछे छूटते जा रहे हैं। इस भागमभाग में तनाव से निकटता बढ़ती जा रही थी। इसका स्पष्ट संकेत उपन्यास में मिलता है-

“हवा में कहीं एक कोहेनूर झिलमिलाता है...। सुबह-सुबह हज़ारों साइकिलें शहर की विभिन्न बस्तियों से निकलती हैं और शाम को थकी-हारी उन्हीं बस्तियों को लौट जाती हैं। सन् दो की ओल्डस्मोबाइल से लेकर साठ की डॉज किंगसेवे तक सैकड़ों तरह की गाड़ियाँ यहाँ भटकती हैं- हार्डिंग रोड, सुन्दरनगर चाणक्यपुरी, नॉर्थ एवेन्यू, साउथ एवेन्यू, जनपथ, ओल्ड मिल रोड, पार्लियामेंट स्ट्रीट, कनाट प्लेस, कनाट सर्कस! इस होड़ में हर व्यक्ति हर दूसरे व्यक्ति का प्रतिद्वन्द्वी है। हर एक का हर एक के साथ युद्ध है। हर एक का घर उसकी अपनी गज़नी है.....”<sup>6</sup> इसी को केन्द्र में रखकर राकेश जी ने तत्कालीन समाज, परिवार, राजनीति, और परिवेश का चित्रण किया है।

वर्तमान भारतीय समाज के अभिजात वर्ग की मानसिक स्थिति दो हिस्सों में विभाजित है एक में है पश्चिमी आधुनिकतावाद और दूसरे में वंशानुगत संस्कारवाद। इससे इस वर्ग के भीतर द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा होती है। उसे पूर्णता के बीच रिक्तता, स्वच्छदता के बीच अवरोध और प्रकाश के बीच अंधकार दिखाई देता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति ऊबने लगता है, भीतर ही भीतर क्रोध, ईर्ष्या और संदेह अपनी जड़े मजबूत कर लेते हैं, वह अपने लिए ही अजनबी हो उठता है, इसी का परिचय हम मोहन राकेश के उपन्यास ‘अंधेरे बन्द कमरे’ में पाते हैं, मधुसूदन इस उपन्यास में आत्मकथाकार, के रूप में आरम्भ से अंत तक विद्यमान रहता है यह एक पत्रकार है जो दिल्ली आकर कस्साबपुरा में एक ठकुराइन के यहां बसता है। कस्साबपुरा में निम्न सामाजिक स्थिति के लोग रहते हैं। जो विभाजन के बाद छोटे-छोटे कमरों में लड़-झगड़ कर रहने के लिए अभिशप्त हैं, आर्थिक अभाव में घुटन भरी जिन्दगी जी रहे हैं। मधुसूदन उस गन्दे और घुटन भरे वातावरण से निकलकर कनाट प्लेस की चहल-पहल में रहना चाहता है। वही उसकी भेंट अपने पुराने मित्र हरबंस और उसकी पत्नी नीलिमा से होती है जो इस उपन्यास में नायक-नायिका के रूप में प्रतिष्ठित है।

अलगाववादी दृष्टिकोण से ‘अंधेरे बन्द कमरे’ में हरबंस और नीलिमा की कथा मुख्य है अन्य कथाओं में ठकुराइन सुषमा श्रीवास्तव और मधुसूदन की कथाएँ हैं। इस उपन्यास में हरबंस और नीलिमा के विचारात्मक अलगाव तथा उनके घात-प्रतिघात का सूक्ष्म चित्रण हुआ है, लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है जहां तक परिचय का सवाल है- “मैं सोचकर भी तय नहीं कर पा रहा हूँ कि इसे क्या कहूँ? आज की दिल्ली का रेखाचित्र? पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा? हरबंस और

नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी? हवा में कहीं एक कोहेनूर झिलमिलाता है, उस कोहेनूर का क्रिस्ता।”<sup>7</sup> वास्तव में लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में दिल्ली के दिन-प्रतिदिन अजनबी होते माहौल रोजगार व मानसिक तनाव से पीड़ित जिन्दगियों का रेखाचित्र, मधुसूदन के माध्यम से निम्न वर्ग व उच्च वर्ग दोनों में व्याप्त निराशा, घुटन और मुक्ति की आत्मकथा तथा हरबंस और नीलिमा के माध्यम से दाम्पत्य जीवन के अन्तर्द्वन्द्व, न चाहते हुए भी साथ रहने की मजबूरी, बन्द कमरों में कैद होती जिन्दगियों की कहानी प्रस्तुत की है जिसका संकेत उपन्यासकार ने उपन्यास के आरम्भ में इस प्रकार दिया है- “मैं नौ साल बाद दिल्ली आया, तो मुझे महसूस हुआ जैसे मेरे लिए यह बिल्कुल नया और अपरिचित शहर हो, जिन लोगों के साथ कभी मेरा रोज़ का उठना-बैठना था, उनमें से कई-एक तो अब बिल्कुल ही नहीं पहचाने जाते थे.....हम लोग कभी-कभी सामने पड़ जाते, तो हल्की-सी ‘हलो-हलो’ के बाद एक-दूसरे के पास से निकल जाते। ‘हलो’ कहने में भी केवल होंठ ही हिलते थे, शब्द बाहर नहीं आते थे।”<sup>8</sup> वर्तमान समय की भागदौड़ ने मनुष्य को यांत्रिक बना दिया है। मानसिक स्तर पर वह अपने परिचित लोगों से इतना दूर हो जाता है कि कभी आकस्मिक रूप से मिलने पर भी वह उन्हें पहचानना नहीं चाहता। दिल्ली के इस अजनबी माहौल में मधुसूदन ही उपन्यास के सभी सूत्रों को एक जगह समेटने का प्रयत्न करता है और यह समेट सकने की प्रक्रिया ही उसकी रोज़ की जिन्दगी है। क्योंकि मधुसूदन ही ठकुराइन, सुषमा श्रीवास्तव, हरबंस और नीलिमा की कथा को जोड़ता है। ठकुराइन का जीवन अंधेरा कमरा है, हरबंस और नीलिमा का जीवन बंद कमरा है। चरित्र विधान से हरबंस ही इस उपन्यास का नायक है और नीलिमा नायिका है। अन्य महत्वपूर्ण पात्रों में लेखक स्वयं मधुसूदन के रूप में उपस्थित है। मधुसूदन के अतिरिक्त मधुसूदन के सम्पर्क में आने वाले अन्य पात्रों में कस्साबपुरा की ठकुराइन और सुषमा श्रीवास्तव हैं। नीलिमा और हरबंस के चरित्र को उजागर करने वाले पात्रों में मुक्ता, सुरजीत और ऊबानू आदि हैं। मधुसूदन दोनों के निकट सम्पर्क में रहता है, तथापि वह अपनी तथाकथित तटस्थ दृष्टि से उनके जीवन को देखता है और उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है।

हरबंस दुहरे व्यक्तित्व का प्राणी है जिसके व्यक्तित्व का गठन एकात्मक रूप से नहीं हुआ है। कभी यह नीलिमा के समक्ष झुकता है तो कभी उसकी उपेक्षा करता है। कभी नीलिमा से भागता है तो कभी उसे अपने पास बुलाता है। नीलिमा में संवेदनशीलता है, कलाकार बनने की कामना होते हुए भी नारीत्व है। पत्नीत्व का उसमें अभाव है किन्तु संवेदनशीलता का नहीं। वह मैसूर जाकर नृत्य की ट्रेनिंग पूरा करना चाहती है और हरबंस के लंदन बुलाने पर कहती है- “छः महीने तो कम से कम लगेंगे ही। मेरे लिए यह मौका बहुत कीमती है। फिर मुझे जीवन में सचमुच ऐसा मौका नहीं मिलेगा। मगर मैं यह सब छोड़कर उसके पास जा भी सकती हूँ, अगर मुझे विश्वास हो कि मेरे वहाँ जाने

से उसे खुशी मिलेगी। यही बात है जो मैं तय नहीं कर पा रही हूँ।”<sup>9</sup> नीलिमा निश्चित रूप से प्राणवान नारी पात्र है। नीलिमा से भी अधिक प्राणवान पात्र कस्साबपुरा की ठकुराइन है। उसकी सजीवता और जीवंतता पाठक के मन को गुदगुदाती है। मधुसूदन के जीवन में दो विरोधी पात्र आते हैं जो दो विरोधी जीवन पद्धतियों के प्रतीक हैं। कस्साबपुरे की ठकुराइन निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और सुषमा श्रीवास्तव अभिजात्य वर्ग का। उपन्यासकार ने गरीबी एवं अभाव को अलग-बोध के कारण के रूप में देखा है। मोहन राकेश ने अँधेरे बन्द कमरे में मधुसूदन, तथा कस्साबपुरा की ठकुराइन के द्वारा गरीबी एवं आर्थिक कठिनाई के चित्र उपस्थित किये हैं- “सारी गली एक बहुत बड़े उगालदान की तरह थी जहाँ बरसों का उगाल कई-कई तहों में जमा हुआ है। कैमरा से ली हुई कोई भी तस्वीर क्या उसका सही चित्र प्रस्तुत कर सकती थी? लगता था जैसे गली का हर घर बरसों से क्षय रोग का मरीज हो। दुर्गंध, बच्चों और स्त्रियों के शोर के रूप में एक भयानक खाँसी उसके अन्दर से उठ रही हो।”<sup>10</sup> आर्थिक कठिनाई के कारण मधुसूदन को भी अपनी जिन्दगी के आगे पीछे घोर अँधेरा ही नजर आता है। मोहन राकेश ठकुराइन को कस्साबपुरा की गन्दी बस्ती के प्रतीक के रूप में लाते हैं, जहाँ गरीब लोग रहते हैं, जहाँ हर तरह का आवागमन है। मोहन राकेश ने अपने मध्यमवर्गीय पात्रों को मनोवैज्ञानिक स्तर पर टूटते दिखाया है। परन्तु कस्साबपुरा की गन्दी बस्ती की ठकुराइन आर्थिक दबाव में टूटती हैं- “मैंने कोठरी में कदम रखा, तो वह भी मुझे ठकुराइन के चेहरे की तरह ही बदली हुई लगी। उसका पलस्तर इतनी जगह से उतर चुका था कि जो दो चार टुकड़े बचे थे वे बहुत अस्वाभाविक रूप से वहाँ चिपकाये गये से लगते थे। छत की कडियाँ बिल्कुल स्याह पड़ चुकी थीं। दीवारों पर जगह-जगह गेरू से स्वस्तिक बने थे और राम नाम लिखा था। दोनों कोठरियों के बीच का दरवाजा चौखट समेत बाहर झूल आया था। सारी कोठरी में एक इस तरह की गन्ध फैली थी जैसे पुराने कपड़ों के ढेर में से आती है। एक चीज जो उस कोठरी को फिर भी बहुत परिचित बना रही थी, वह थी ऊपर से आती हुई स्त्रियों के लड़ने की आवाज। मुझे लगा जैसे दस साल से वह लड़ाई लगातार उसी तरह चल रही हो और अभी तक उसका फैसला न हुआ हो।”<sup>11</sup>

‘अँधेरे बन्द कमरे’ उपन्यास में एक प्रकार से मानव मुक्ति की पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। अतीत से मुक्ति, स्मृति से मुक्ति, हर उस चीज से मुक्ति जो हमें चलाए चलती है और अपने रेले में हमें घसीट ले जाती है। लेखक ने इस वर्ग के भरेपूरेपन के बीच की रिक्तता, स्वच्छदता के बीच के अवरोध और बनावटी प्रकाश के बीच के वास्तविक अन्धकार को पहचाना है। हरबंस अपने ही घर और मन के अकेलेपन से ऊबकर विदेश चला जाता है। वहाँ जाते ही वह सामान्य कोटि के ‘होमसिकनेस’ से पीड़ित होता है और एक छिछले भावुक की तरह बार-बार नीलिमा को बुलावा भेजता है और नीलिमा मैसूर के लिए आयोजित अपनी नृत्य-यात्रा छोड़कर लन्दन पहुँचती है। वहाँ पहुँचने

पर फिर दोनों की आपसी ऊब का, ईर्ष्या और खीज का वही पुराना दौर शुरू होता है। इधर मधुसूदन हरबंस के चले जाने के दुःखित होता है, नीलिमा और उसके परिवार से दूर भागता है, और शुक्ला को मन ही मन प्रेम करता है परन्तु हरबंस के एक मित्र सुरजीत से उसकी नज़दिकियाँ बर्दाश्त नहीं कर पाता ये सारी परिस्थितियाँ उसे मानसिक स्तर पर झकझोर देती हैं वह उनसे बाहर नहीं निकल पाता और नींद की गोलियाँ खाना शुरू कर देता है- “गाड़ियों की एक भीड़ स्टेशन के अहाते से गुजर रही थी, मगर मेरे लिए उनकी चमकती हुई बत्तियों और गुराँते हुए इंजनों का जैसे अस्तित्व ही नहीं था। मैं रुका हुआ था, तो मेरे साथ मेरे अन्दर और बाहर सभी कुछ रुका हुआ था। आसपास जो कुछ था, वह एक चौखट में जड़ा हुआ दृश्य था जो उस चौखट से बाहर नहीं निकल पाता था। हर चीज अपनी गति के बावजूद उस चौखट में कसी हुई थी। मैं फुहार में भीगता रहा और यह सोचने की चेष्टा करता रहा कि मैं क्या सोच रहा हूँ! क्या मुझे किसी चीज की जरूरत महसूस हो रही थी? क्या मुझे भूख लग रही थी? या, क्या मुझे सर्दी लग रही थी और मैं उस सर्दी में बचना चाह रहा था? आखिर वह अनुभूति क्या थी? जड़ता या विह्वलता? और विह्वलता कैसी? मेरे चारों तरफ से एक भरी-पूरी, ठसाठस लदी हुई, दुनिया गुजर रही थी और मैं अपने अन्दर एक अभाव का, एक शून्य का अनुभव कर रहा था। वह अभाव क्या था? वह शून्य कहाँ था?”<sup>12</sup> दिल्ली में रहकर मधुसूदन के लिए इस धुन्ध से मुक्ति पाना सम्भव नहीं था वह दिल्ली छोड़कर लखनऊ चला जाता है। इस विराट मानवीय सत्य में जीवन के अँधेरे और उजियारे उजागर होते हैं। अँधेरे में भय की मानसिकता होती है। अस्पष्टता की प्रतीति होती है। उलझन की प्रतीति होती है। शून्यता का अहसास होता है। भय की अनुभूति होती है। अस्तित्वहीनता महसूस होती है। व्यक्ति स्वयं को विचारों व भावनाओं की दृष्टि से अजनबी महसूस करता है। विदेश और देश के दोहरे अजनबीपन के शिकार पात्रों को हम ‘अँधेरे बन्द कमरे’ में देख सकते हैं नीलिमा की बीजी के व्यवहार में भी इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है- “बीजी जितनी देर बैठी रही थीं उन्होंने बहुत कम बात की थी। वे बहुत छोटे-छोटे वाक्य बोलती थी और जब तक मतलब न हो, तब तक कोई बात नहीं करती थी। उनके चेहरे से मुझे यह लगा था कि उन्हें नये लोगों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं है। उन्हें जैसे जिन्दगी में जो कुछ देखना था वे देख चुकी थी और अब उन्हें और किसी नए अनुभव की अपेक्षा नहीं थी। उनकी खामोशी से मुझे लगा जैसे हर नया व्यक्ति उनके लिए एक अजनबी की तरह है जो आधी रात को आराम से सोये हुए एक आदमी का दरवाजा खटखटाकर उसकी नींद में खलल डाल देता है। वे जैसे न तो अपने इर्द-गिर्द खिंचे हुए दायरे से बाहर कदम रखे। मुझे उनका भाव एक जीवन से संतुष्ट व्यक्ति का भाव नहीं लगा।”<sup>13</sup> अपने अकेलेपन और अस्तित्व के संकट से पीड़ित मनः स्थिति के कारण ही मधुसूदन और हरबंस बार-बार अपनी नौकरी यहाँ तक की अपने शहर व देश को

भी छोड़ने के लिए मजबूर होते हैं। अतः 'अंधेरे बन्द कमरे' आधुनिक जीवन-बोध से भरपूर उपन्यास है। इसमें मानव नियति का ही चित्र कथाकार ने खींचा है।

यह उपन्यास महानगरीय बोध की एक अनूठी कहानी कहता है, अति व्यस्त जीवन की एक झाँकी भी इसमें देखी जा सकती है- "फुटपाथ की भीड़ में सहसा कोई परिचित मगर भूला हुआ चेहरा सामने पड़ जाता है। हम दोनों के चेहरों पर एक अर्थहीन मुसकान आ जाती है, जैसे पहचानना न चाहते हुए भी हमें एक-दूसरे को पहचानना पड़ रहा हो।"14 साथ ही इस उपन्यास में मानवीय अस्मिता एवं अस्तित्व का संकट आदि को समग्रता से उजागर करने का प्रयास यहां हुआ है जिसका स्पष्ट संकेत उपन्यासकार के इन शब्दों में है- "हर दूसरा आदमी जिससे मैं मिलता हूँ, उस पर मेरा मन होगा कि एक टिप्पणी लिख दूँ। मैं जिससे भी मिलता हूँ लगता है वह एक छीना-झपटी में पड़ा है। लोगों ने इसे एक सुन्दर नाम भी दे रखा है, 'व्यक्ति सुख की खोज'। वह सुख की खोज क्या है? झूठ बोलो, काम से बचो, जैसे भी हो पैसा जमा करो और अधिकार पाने के लिए कुछ भी कुरबान कर दो। इस नैतिकता का एक बना-बनाया शास्त्र है जो कोई किसी को नहीं पढ़ाता, फिर भी सब लोग उसके पंडित हैं। और यह शास्त्र कहता है कि अपने अलावा हर एक को हीन समझो, हर एक को अविश्वास की नजर से देखो, खुद झूठ बोलो और दूसरों के झूठ पर नाक-भौं चढ़ओ, कोई तुमसे मूल्यों की बात करे, तो कन्धे हिलाकर मुँह बिचका दो और एक ही विश्वास लेकर जियो कि बड़े लोगों से मिल-जुलकर और अपने सहयोगियों को बेवकूफ बनाकर तुम्हें अपना उल्लू सीधा करना है। सरकार से अपने काम निकालो और दोस्तों में बैठकर सरकार की निन्दा करो। अगर तुम्हारा सम्बन्ध इंतेलेक्चुअल वर्ग से है, तो बड़ी-बड़ी डींगें मारो, विदेश में जाकर रहने के सपने देखो और अपने ओछे स्वार्थों को सिद्धान्त और दर्शन का रूप दे लो। और इस सबसे प्राप्त होनेवाला व्यक्तिगत सुख क्या है? सोशल स्टेटस"15 राकेश जी ने इस उपन्यास में अंधेरा, उजाला, अजनबीपन, मृत्यु-भय, निराशा, पश्चाताप, रिक्तता, सर्वोपरि मानव नियति को ही शब्दबद्ध किया है। इस संबंध में निर्मल वर्मा ने लिखा है- "मनुष्य का लावारिस, अलगाव और अधूरापन कोई आधुनिक, पश्चिमी बोध की देन नहीं है- वह मनुष्य के मनुष्यत्व के बीच एक कीड़े की तरह विद्यमान है, धरती पर उसके महज 'होने' के बोध में निहित है। कला यदि इनसे अलग है तो इसलिए नहीं कि वह इस अधूरेपन के पाप से मुक्ति का स्वप्न नहीं देखती- यह स्वप्न और आकांक्षा ही तो उनकी सतत प्रासंगिकता के केंद्र में हैं- फर्क केवल इतना है और बुनियादी अन्तर है, कि वह स्वप्न कहीं बाहर और परे न होकर स्वयं उनकी सृष्टि, उसकी फार्म, उसकी संरचना में सन्निहित है।"16 इस शताब्दी में अस्मिता, पश्चिम से मुठभेड़, विचार की नियति, व्यक्ति और आत्म चेतना, सामाजिक तनाव, इतिहास के अंतर्विरोध आदि जो प्रश्न केन्द्रीय रहे हैं, उन सभी को तीक्ष्णता, साहस

और तैयारी के साथ मोहन राकेश ने उठाया है। एक उपन्यासकार के रूप में वह हमारे सामने व्यक्ति के आत्मसंघर्ष, आत्मबोध, अंतःकरण को नैतिक जिम्मेदारी के साथ सूक्ष्मतम व्योरो में गूँथते हुए प्रस्तुत करते हैं।

यह उपन्यास केवल नई दिल्ली के आधुनिकतम जीवन का ही चित्रण नहीं करता है, और न ही नीलिमा और हरबंस के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी कहना इसका उद्देश्य है। लेखक दिल्ली के रेखाचित्र, हरबंस और नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व और मधुसूदन की आत्मकथा के माध्यम से अस्तित्ववादी मान्यता की स्थापना करना चाहता है। व्यक्ति सह अस्तित्व को नरक मानते हुए भी साथ रहने के लिए मजबूर है। हरबंस एक तरफ सह जीवन की यंत्रणा से पीड़ित है तो दूसरी ओर उसके जीवन को निगलता हुआ सूनापन है। दस वर्षों के बाद जब वह मधुसूदन से मिलता है तो कहता है- "आदमी एक खास उम्र तक ही किसी नये आदमी को अपना मित्र बना सकता है।..... और मेरे लिए वह उम्र यहाँ से जाने से पहले ही बीत चुकी थी। मैं नहीं जानता था कि मैं उस उम्र में पहुँच चुका हूँ जहाँ आदमी चाहकर भी नये सिरे से जिन्दगी शुरू नहीं कर सकता। अगर तब मैं यह जानता तो कभी बाहर न जाता। विदेश में बिताये हुए छः साल मेरे लिए कितने दुःख के और कितने कष्ट के रहे हैं, यह शायद मैं तुम्हें ठीक से नहीं बता सकता।"17 वह मानता है कि हमारे पास एक दूसरे से साथ चिपके रहने के सिवाय कोई चारा नहीं है। इसी तरह मधुसूदन, नीलिमा और सुषमा श्रीवास्तव आदि सभी पात्र अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं नीलिमा यह मानती है जैसे हम पति, पत्नी न होकर एक दूसरे के दुश्मन हो और साथ रहकर एक दूसरे के लिए अजनबी हो। लेखक ने इस उपन्यास के उद्देश्य को स्वयं स्पष्ट करते हुए लिखा है- "व्यक्ति और व्यक्ति' के बीच एक गहरी खाई है, आसपास एक गहरा खड्डा है- वे चाहकर भी उन्हें भर नहीं पाते, पर न भर पाने की मजबूरी से बचकर क्या वे रह सकते हैं। अंधेरे में भटकना और बंद होकर रहना उनकी मजबूरी है, फिर भी वे एक ही कमरे में साथ-साथ हैं- वह कमरा उनकी जिन्दगी है। अंधेरा या बन्द होने से मुक्ति एक दूसरे में और एक दूसरे की साझेदारी में है। पर उन्हें मुक्ति नहीं मिल पाती।"18 इस उपन्यास में लेखक ने आधुनिक युग की पृष्ठ भूमि पर सह जीवन की यंत्रणा का चित्रण करते हुए, व्यक्तियों के खोखले जीवन को अस्तित्ववादी परिभाषा के आधार पर स्पष्ट किया है। अस्तित्ववादी दर्शन की स्थापना होने के कारण यह व्यक्तिवादी उपन्यास है। इस उपन्यास में आधुनिक युग के समस्त व्यक्तित्वों का चित्रण हुआ है। मधुसूदन, हरबंस, नीलिमा, ठकुराइन और सुषमा श्रीवास्तव के जीवन के माध्यम से उपन्यासकार ने तनाव, मुक्ति, स्वतंत्रता जैसे प्रश्नों पर विचार किया है। मनुष्य काफी हद तक प्रकृति का, परिस्थितियों का दास है और विवशता तथा उससे उत्पन्न घुटन, ऊब, निराशा आदि उसकी नियति है। विवशता की मनःस्थिति आधुनिक जीवन की एक सच्चाई है जिसे उपन्यासकार मोहन राकेश ने

इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण उपन्यास को पढ़ने के बाद यह निष्कर्ष सामने आता है कि मनुष्य दिन-प्रतिदिन अपने विचारों, जीवन पद्धतियों, दैनिक क्रियाकलापों, सामाजिक और मानसिक ज़रूरतों के कारण एक दूसरे से अलग होता जा रहा है। यह अलगाव बोध उसे मानसिक रूप से तनावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश कर रहा है। इस विवशता को उपन्यास में हम हरबंस की शकल में पहचानते हैं। हरबंस और नीलिमा के माध्यम से पारस्परिक ईमानदारी, भावनात्मक लगाव और मानसिक समदृष्टि से रिक्त दाम्पत्य जीवन को उपन्यास में प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है। अपनी पहचान के लिए पहचानहीन होते जा रहे भारतीय अभिजात वर्ग की भौतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक महत्वाकांक्षाओं और अँधेरे बन्द कमरों को खोलने वाला यह उपन्यास हिन्दी की विशिष्ट कलाकृतियों में से एक है।

### संदर्भ सूची

1. संपादक-प्रभाकर, नया ज्ञानोदय, अंक-3 मई 2003 पेज-24
2. संपादक डॉ. यश गुलाटी: जागृति जून 1985: मोहन राकेश विशेषांक पेज-4
3. डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता: मोहन राकेश का साहित्य: पेज-127
4. सम्पादक डॉ. इन्द्रनाथ मदान: हिन्दी उपन्यास: परख और पहचान
5. हिन्दी उपन्यास का इतिहास: गोपाल राय: पेज- 276
6. मोहन राकेश : अँधेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
7. अँधेरे बन्द कमरे, मोहन राकेश, भूमिका से।
8. अँधेरे बन्द कमरे, मोहन राकेश, पृष्ठ- 11
9. मोहन राकेश : अँधेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
10. वही
11. वही
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. कला का जोखिम, निर्मल वर्मा
17. मोहन राकेश : अँधेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
18. वही